नेपाल
नागरिक समाज
(साक्षात्कार)

साक्षात्कार

अ

अरूणा उप्रेती, नेपाल में जन स्वास्थ्य – एक परिदृश्य

क

कपिल श्रेष्ठ, नेपाल में विदेशी सहायता

च

डा. चैतन्य मिश्र से बातचीत

प

पीताम्बर शर्मा, जन आंदोलनों के बाद वामपंथी पार्टीयों की भूमिका : एक अनपेक्षित टिप्पणी

य

युव राज घिमिरे, भारत–नेपाल संबंध

नेपाल में जन स्वास्थ्य – एक परिदृश्य

डा. अरूणा उप्रेती

एल्मा एटा में घोषित प्राथमिक स्वास्थ सेवा से संबंधित बाते अभी भी हमारे संदर्भ में लागू होती है। बड़े–बड़े हास्पिटल, डायगोनिस्टिक और उपचार केंद्रों की जरूरत देश नहीं हैं ऐसा नहीं है। जिस देश में 10 प्रतिशत जनता को हास्पिटल की सुविधा उपलब्ध हो और 90 प्रतिशत जनता को प्राइमरी हेल्थ केयर पर आधारित होना पड़ता है। लेकिन हमारी समस्या तो यह है कि निम्न स्तर की स्वास्थ्या उपचार की सुविधा उपलब्ध नहीं है। जब तक यह साधारण प्राथमिक स्वास्थ सबके लिए उपलब्ध नहीं होता तब तक स्वास्थ्य पर विचार संभव नहीं है। यह सुविधायें उपलब्ध नहीं है, कई अध्ययनों से पता चला है।

इस समय सरकार हेथ पोस्ट, सब–हेल्थ पोस्ट, प्राइमरी हेल्थ सेंटर का विचार लायी है। लेकिन गांव में जाकर देखो तो सब–हेल्थ पोस्ट केवल कागज में है, हेल्थ पोस्ट में कोई कर्मचारी नहीं है। मानव संसाधन कुछ नहीं है। वहां पर जमादार और पिउन दवाई बाट रहे हैं। हेल्थ पोस्ट इस केवल सिटामोल और आयरन टैबलेट वितरण केंद्र बने है।

हेल्थ पोस्ट का विचार प्रिवेन्टिव और क्यूरेटिव उपचार के आवश्यकता हिसाब से आया है। इस समय प्रिवेन्टिव की तरफ हेल्थ पोस्ट का कोई सरोकार नहीं है। देश में अधिकतर जगहों पर हेल्थ पोस्ट की हालत गंभीर है और सब–हेल्थ पोस्ट की तो बात भी नहीं करना चाहती।

स्वास्थ्य केन्द्र तथा उप केन्द्रों में जो इम्युनिजेशन, आइरन टैबलेट, गर्भवती महिलाओं को चेक–अप करना और पोलियो वैक्सिन जैसी जरूरतें है, नब्बे प्रतिशत हेल्थ पोस्टों में उपलब्ध नहीं है। इसमें भी महिलाओं की स्थिति, उनकी पहुंच और भी दयनीय है। इन स्वास्थ्य केन्द्रों के जांचकर्मी पुरुष हैं जो महिलाओं की समस्याओं के प्रति संवेदनशील नहीं है। इसलिए महिलाऐं वहा जाना नहीं चाहती है। और जाती भी हैं तो सिटामोल आयरन टैबलेट से ज्यादा कुछ नहीं मिलता।

ऐसे देश के प्राइमरी हेल्थ केयर को देखने पर पता चलता है कि बहुत कम सुविधायें हैं जो है उनमे भी महिलाओं की पहुंच नहीं है। इस तरह से हम लोग चलें तो 3000 तक भी हम सब के लिए स्वास्थ्य के अनुरूप सेवा उपलब्ध नहीं करा सकते हैं। कई मायनों में शहर की अपेक्षा गांव में कम समस्यायें है, लेकिन इसका अर्थ यह तो नहीं कि यह सेवायें गांव में न पहुंचायी जाए।

इस समय सरकार जो निजीकरण का विचार लायी है उसमें हास्पिटल, नर्सिंग होम को प्राथमिकता दी जा रही है। सभी प्राविधिक यहीं आ रहे हैं इसलिए हेल्थ पोस्ट और सब–हेल्थ पोस्ट में जाना नहीं चाहते। जैसे वी.पी. मेमोरियल हास्पिटल को सरकारी स्वास्थ बजट का 25 प्रतिशत चला जाता है। वहां काम ठीक ढंग से हो रहा है। 6 जिलों को 25 प्रतिशत बजट चले जायेगा तो बाकी जगह क्या होगा हमारे देश में स्वास्थ्य बजट 4.1 प्रतिशत है जो डब्ल्यू.

एच.ओ. के अनुसार 10 प्रतिशत होना चाहिए। 4 प्रतिशत बजट से ज्यादातर पैसा तलब में खर्च हो जाता हैं। यह भी अनुत्पादक तलब है। क्योंकि यहां के कर्मचारी महीने में एक बार पैसा लेने के लिए आते हैं और चले जाते हैं। इसको समझने के लिए ज्यादा दूर जाने की जरूरत नहीं है, भतपुर, ललितपुर के 2–4 एच.पी. की स्थिति को देखने पर पता चलाता है। और सुदूर पश्चिमांचल की बात करना भी मुश्किल है। जिला अस्पतालों में गाय–भैंस बांध दी जाती हैं आज ही मैने अखबार में पढ़ा। डोटी में एक सरकारी अस्पताल है और एक यू.एम. एन. के द्वारा खोला गया टी.आई.एम. अस्पताल है, सरकारी अस्पताल में तो लोग जाते ही नहीं हैं, वहां पर कोई सुविधा नहीं है। सभी लोग यू.एम.एन. के अस्पताल में जाते हैं। इसका मतलब लोग जाते ही नहीं ऐसा तो नहीं है, सुविधायें हो तो लोग जाते है इससे पता चलता है। एक तरफ सुविधा नहीं है, दूसरी तरफ सुविधा जितनी है उसका भी उपयोग नहीं हो रहा है। यूटीलाइज नहीं हो रहा है क्यों नहीं हो रहा है इसकी समीक्षा नहीं की जा रही हैं।

एक और समाचार पढ़ने में आया, (छारे रोग) बीमार होने पर लड़की को किसी दूसरे बच्चे का कलेजा खाने से ठीक होगा, इस विचार से किसी का कलेजा निकाल कर खिलाया गया। हम 21वीं शताब्दी में है ऐसा सुनने को मिल रहा है। यह घटना तराई के किसी जिले की है, दूर की नहीं है। हम इस समय कहा से कैसे शुरू करें ऐसी अवस्था में है।

एक तरफ ऐसी स्थिति है तो दूसरी तरफ सी.टी. स्कैन, एम.आर.आई. करने की सुविधा जहां उपलब्ध है सरकार वहां पर बहुत अधिक बजट खर्च कर रही है। पब्लिक स्पेंडिंग के नाम पर लेकिन जहां पहुंचना चाहिए वहां नहीं पहुंच रहा है। जैसे भरतपुर का अस्पताल एक जिला अस्पताल है लेकिन अंचल अस्पताल काम कर रहा है। इस अस्पताल में 5–10 डाक्टरों की पोस्टिंग है लेकिन 20–25 की जरूरत हैं सुविधाएं नहीं है, सीमित संशाधनों के भीतर काम करना पड़ता है।

ऐसी है वीर अस्पताल जो अवस्था है वो किसी गाय के गोठ से कम नहीं है। यहां भ्रष्टाचार सबसे बड़ी समस्या बनकर खड़ी है। यहां राजनीति का अखाड़ा बन गया है। सी.टी. स्कैन, विडिओ, एक्सरे मशिन सभी अक्सर खराब रहती है। इनको बनाने के लिए बाहर से लोगों को बुलाना पड़ता है, इस समय कमिशन लेते है। इनके खराब रहने पर निजी क्षेत्र की मशीन चलती है। यहां उपर से नीचे तक विसंगतियां भरी पड़ी हैं। इसके कारण अभी नेपाल को कौन बचा रहा है यह कहना मुश्किल है। भगवान, अल्लाह, क्राइस्ट या पशुपतिनाथ? अचंभे गी बात है लोग कैसे जी रहे हैं। सरकार के पास कोई योजना नहीं है, कोइ सोच नहीं है कहां क्या करना चाहिए।

हमारी नौवी पंचवर्षीय येजना में कहा गया है 1997–2001 तक नेपाल की मातृ मृत्यु दर 540 से घटाकर 400 पहुंचायी जाएगी। अभी तक 539 से कम नहीं हो पायी, अब बाकी समय में क्या होगा। तथ्यांक बहुत गलत किस्म के तैयार होते हैं जो श्री 5 सरकार की ओर से पेश होते हैं। कहीं पर 100 प्रतिशत वैक्सीनेशन लिख दिया है जो संभव नहीं है। जिस देश की 10 प्रतिशत जनता को आधुनिक स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध है वहां 100 प्रतिशत वैक्सीनेशन कैसे

हो सकता है? पोलियो का डायम्यूनिजेशन की बात करते समय कुद जगहों पर 150 प्रतिशत हो चुका है। ऐसा लिख दिया गया। यू.एन. में जाकर पेश करते समय शर्म आती है। श्रीलंका जहां की जन स्वास्थ्य प्रणाली बहुत अच्छी है, उनके यहां 75 प्रतिशत है। क्या है?यह कैसे 150 प्रतिशत हो गया? यह पुछने पर क्या कहा जाए। जैसे किसी जगह पर 1000 बच्चे हैं यह मानकर चलें तो वहां 15000 है। और 100 प्रतिशत है तो अमरिका में भी संभव नहीं है।

न्यू एरा–माइक्रो न्यूट्रिंट : इस विषय में बात चली है, माइक्रो न्यूट्रिंट विचार ही समस्यामूल है। जिस देश में जरूरत के बराबर कैलोरी नहीं मिलती है, दाल, भात, सब्जी पेटभर सुबह शाम मिल जाय तो माइक्रो न्यूट्रिंट की जरूरत नहीं है। इस विचार से पोषण से जुड़ी सारी बातें पिल्स मा जाकर रूक जाती हैं। जिस पिल्स को लेने पर सारी समस्या का समाधान हो जाएगा, ऐसा प्रचारित किया जा रहा है। मेरा मतलब विटा या आयरन की जरूरत नहीं है ऐसा नहीं है। लेकिन क्या सभी लोगों को विटामीन–ए की कैप्सूल बांट देनी चाहिए। तराइ में हर जगह मेवा मिलता उसमें सबसे ज्यादा विटामीन–ए मिलता है जो घर–घर में होता है। और भी कई सब्जियां है जिनमें विटामिन–ए मिलता है जो घर में उगायी जाती है जिसको खरीदना भी नहीं पड़ता हैं। इन सबको छोड़कर हम माइक्रो न्यूट्रिंट बात कर रहे हैं, क्यों? क्योंकि यह सभी कार्यक्रम बाहर से संचालित है। इन टैब्लेट्स का बड़ा बाजार विस्तार करने का कार्यक्रम चला है। अक्सर गांव में उपलब्ध मेवा, अमरूद या अन्य सब्जियों के बारे में कोई बात नहीं की जाती, जहां विटामिन–ए के स्रोत वाली खाद्य सामग्री प्रसस्त हैं। नहीं सबसे ज्यादा विटामिन–ए की कमी है शरीर में, इसीलिए विटामीन–ए कि उपलब्धता तो कोई समस्या नहीं है।

दूसरी बात है गर्भवती महिलाओं को आयरन टैब्लेट बांटना और एनीमिया घटाना। नेपाल–भारत जैसे देशों में 60–75 प्रतिशत गर्भवती महिलायें रक्त अल्पता से ग्रसित रहने के आंकड़े है। इनमें से कितनी महिलाऐं हेल्थ पोस्ट जाती है और दी गई आयरन की गोलियां कितनों ने खायी है। कई जगहों पर तो दी गई टैब्लेट्स ऐसे ही जमा रहती है। और महत्वपूर्ण बात है क्या आयरन टैब्लेट से ही इस समस्या का समाधान होता है? कई बार तो आयरन टैब्लेट खाने से पेट में आयोंटेटिया होने के कारण लोग इसको फेंक देते हैं। इस तरह की बाते अभी ज्यादा पता नहीं चलती है इसलिए स्वास्थ्य सुरक्षा की बात हमारे यहां नहीं आयी है। माइक्रो न्यूट्रिंट की जरूरत ही नहीं है, ऐसा नहीं है लेकिन पर्याप्त भेजन उपलब्ध हो तो आवश्यकता के अनुरूप उसमें मिल जाता है।

हेल्थ सर्विस, रिसर्च और एजूकेशन : इस समय नेपाल में जो प्राइवेट मेडिकल कालेज है उनसे निकल कर आने वाली जनशक्ति कैसी है इसके बारे में हम कुछ नहीं कह सकते। लेकिन इस शिक्षण अस्पतालों की विमारियों की दशा व भीड़ देशकर इनकी पढ़ाई का स्तर भी ठीक है ऐसा नहीं लगता। पैसे के कारण ही वहां पर पढ़ाई की जाती है। जहां पर बिमारियों की उपस्थिति न्यून हो वहां पर वो क्या सीख सकेंगे। सरकारी शिक्षण अस्पतालों का गुण स्तर ठीक है। स्टाफ नर्स मं भी सरकारी और यू.एम.एन. संस्थाओं से जो आ रहे थे वो ठीक थे पर अब निजीकरण किया जा रहा तो कुछ कहा नहीं जा सकता है कि गुण स्तर ठीक रहेगा।

कैसी जनशक्ति चाहिए : मैं हेल्थ असिस्टेंट की पढ़ाई करने के बाद डाक्टर बनी हूं। 76 में हेल्थ असिस्टेंट पास किया। यह विचार चाईनिज बेसफुड डाक्टरों का था, एच.ए. की एक साल की पढ़ाई के बाद एम.बी.बी.एस. कर सकते थे, लेकिन कम्पीटिशन बहुत अधिक था। हमारे समय में 2000 लोगों ने इक्जाम दिया जिसमें से दो सौ लोगों को लिया था। कम्यूनिटी मेडिसीन का अनुभव और पढ़ाई ठीक होने के कारण इस क्षेत्र से जो डाक्टर आते थे वो योग्य होते थे। लेकिन अब एच.एम.जी. ने इसको समाप्त कर दिया हैं। इंटरमीडिएट साइंस के लिए अब यह एम.बी.बी.एस. खुला है। मध्य स्तर के दक्ष व्यक्तियों का उत्पादन सरकारी स्तर पर पुरी तरह बंद है। इस समय भी नेपाल डज्ञक्टरों की तुलना में स्टाफ नर्स की पोस्टिंग कम है। एक डाक्टर को दो नर्सो की जरूरत होती है, कम से कम 1:1 तो होना ही चाहिए वह भी नहीं है। पूरा स्रोत उच्च स्तर की जनशक्ति के उत्पादन में खर्च हो रही है।

इसके कारण गांव में ए.एन.एम. भी नहीं है जो हैं उनका उपयोग नहीं हा रहा है। व्यवस्थापन अच्छा न होने के कारण ऐसा हो रहा है। निजी संस्थानों के उत्पादित जो ए.एन.एम. हैं उनका गुणस्तर बहुत कम है नहीं के बराबर है। सी.टी.इ.वी.टी. पैसा लेकर करेगा ऐसा सुनने में आया है। एक तरफ इनका उत्पादन हो रहा है तो सरकार इनको काम नहीं दे पाती। जो हैं उनका ठीक ढंग से समायोजन नहीं हो रहा है, इसकी कोई सोच भी नहीं है।

क्यों? स्वास्थ्य एक महत्वपूर्णे सवाल है यह सोचकर इस विषय पर कोई बातचीत नहीं होती है। जिनको बोलना चाहिए जो पेशागत है डाक्टर है वो जन स्वास्थ्य को प्राथमिकता में नहीं रखते। नेपाल मेडिकल काउंसिल ने जन स्वास्थ्य को लेकर कभी कोई आंदोलन नहीं किया। भोजराज जोशी ने इतनी बड़ी बदमाशी की फिर भी चुप हैं, और धक्कीदी जा रही है। नेपाल मेडिकल एशोसिएशन ने ऐसा करने पर राजिनामा देने का कड़ा वक्तब्य दिया है? एन.एम.ए. और एन.एम.सी. ने कभी भी इतिहास में सार्वजनिक सवाल को लेकर काम नहीं किया। सचिव और मंत्री को क्या पता?

एन.जी.ओ. : यहां भी प्राथमिकता के दृष्टिकोण से कुछ काम नहीं रहा है। मेरा अनुभव है कि उनकी प्राथमिकताएं ऊपर से बनकर आती है। गांव में क्या महत्वपूर्ण है इस विषय पर कम बात होती है। उदाहरण के लिए नेपाल में इस समय सेव मदरहुड खूब चला है। विचार के हिसाब यह एकदम ठीक है इसमें कोई दो राय नहीं लेकिन इसको केवल गर्भवती महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य तक सीमित कर दिया है। महिलाओं को फार्म बांटकर टिटनेस की सूई देना केवल समस्या का समाधान नहीं है। इससे आगे की बातो को लेकर कोई चर्चा नहीं है। सेव मदरहुड की चर्चा में आजकल इमरजेंसी केयर हास्पिटल बनाने की बाते हुई हैं। इमरजेंसी केयर का महत्व है लेकिन गांव की महिलाएं वहां पहुंचने में सक्षम है या नहीं? उनको इसकी जानकारी कैसे हो लौजिस्टिक सहायता कौन करेगा इस विषय पर कोई बात नहीं है केवल हास्पिटल बनाने की बात है। जो हास्पिटल है उसमें आकस्मिक सेवा बढ़ाई जा सकती है। इस समय 10 प्रतिशत जनता अस्पताल पहुंचती है तो वह सब किसके लिए। बाकी नब्बे प्रतिशत जनता के लिए क्या करना है? उनको सेव मदरहुड नहीं चाहिए यह एक बात है।

दूसरी बात जब तक महिलाओं के लिए सुरक्षित नारित्व की बात नहीं होती तब तक सुरक्षित मातृत्व की बात कैसे संभव है, कैसे ले जाये। एबर्सन की समस्या पर ढेर सारी बातें होती है लेकिन कार्यक्रम एक भी नहीं आता। यह माइक्रो न्यूट्रस की बात है यह भी एन.जी.ओज. की अपनी प्राथमिकता है जनता की नहीं।

एक और बात गांव में क्लिनीक 10–2 बजे तक खुलते है जिस समय अधिकतर लोग काम में व्यस्त रहते हैं। जिनको इस सेवा कि जरूरत उनकी सुविधा को ध्यान में नहीं रखा जाता, ऐसी अवस्था में क्या होगा?

एफ.सी.एच.डब्ल्यू. : फिमेल कम्यूनिटी हेल्थ वर्कर श्री 5 सरकार 48000 स्वयं सेवक परिचालन करने की बात पर गर्व करती है। हर जगह यह बात दोहराई जाती है। गांव में जाकर देखो तो उनका काम कुछ भी नहीं है। कुल 3 दिन की तालीम होती है उससे यह क्या काम कर सकते है। और यह स्वयंसेवी है, हमारे जैसे तथाकथित बड़े लोगों के जाने पर दो–चार हजार खर्च होता है और गोरों के जाने क्या कहा जा सकता है? ऐसे में गांव के लोगों को स्वयंसेवी होकर काम करने के लिए कहा जाय। इस सबके चलते एफ.सी.एन. शून्य के बराबर है और सदा प्राइमरी हेल्थ केयर का काम किया कहना सरकार का बेतुकापन है। पोलियो ड्रॉप भी वही पिलाएंगे, विटामीन भी वही देगें, पोषण भी वही और प्रीग्नेंसी की समस्याओं में भी वही जायेंगे, हमारे लिए तो मुश्किल है, 3 दिन के कोर्स से वो क्या कर सकते है, मैं तो चौंक जाती हूं हमारे देश में लोग कैसे जी रहे है? जितने जी रहे है, बहुत हैं।

एच.आई.एस. : इसकी हालत शून्य है। जैसे उदाहरण है नेपाल के मातृ मृत्यु द? सरकारी आंकड़ें में 539 है। हाल ही में साउथ एशियन हुमेन डेवलपमेंट के अनुसार 1500 है। 540 की जगह पर 560–530 तो हो सकता लेकिन 500 और 1500 के बीच कोई तादात्म्य नहीं है। कोई जानकारी स्वास्थ्य मंत्रालय में बैठकर हेल्थ पोस्ट से मांगी जाती है। कई लोगों ने पोलियो वैक्सीनेन ले जाकर नदी के किनारे फेंक दिया है और सौ प्रतिशत की रिपोर्ट पेश की है। इसके आधार पर तथ्यांक पेश किये जाते हैं। इससे तो अच्छा है कि हमारे पास तथ्यांक उपलब्ध नहीं है कहा जाय। हमारी सभी सूचनाऐं प्रायः हास्पिटल बेस्ड हैं। क्या यह सूचना देश को प्रतिनिधित्व करती है केवल 10 प्रतिशत ने आुधनिक सुविधा ली है। सबसे अच्छी सूचना प्रणाली एक्सपेंडेड प्रोग्राम आफ इमीनाइजेशन को माना जाता है। इनकी अवस्था भी वही है कोल्ड चेन की बात करना संभव नहीं है।

एच.आई.वी./ऐड्स : हमारे देश में भी एच.आई.वी., ऐड्स है, इस तरह के डाक्युमेंट्स आ रहे हैं। लेकिन यह तथ्यांक सरकारी अस्पतालों से तैयार किया गया है। प्राइवेट हास्पिटल, नर्सिंग होम में कितने केसेज हैं इनका रिकार्ड नहीं है मेडिकल में भ्झी ऐसे केस जब आतें है तो उनका रिकार्ड कहीं नहीं जाता। स्थिति भयावह है, कहां से शुरू करना समझ पाना कठिन है। इस समय तो मैं थिंक ग्लोबली, एक्ट लोकली के स्तर पहुंची हूं, यू.एन. में जाना, बाहर और ऊपर–ऊपर जाना कुछ महत्वपूर्ण नहीं है। बल्कि गांव में जाकर 100 लोगों के बीच भी अगर ढंग से काम कर सकूं तो नहीं संतोशजनक है।

ड्रग : यहां भी विसंगतियां है, एक तरफ तो जरूरत के हिसाब से दवाई नहीं मिलती और जिन चीजों की जरूरत नहीं है उनका प्रयोग ज्यादा हो रहा हैं एक डाक्टर के पर्चे छप दवाईयां होती है। विटामीन और खना पचाने के लिए। बांग्लादेश में जिन दवाइयों को प्रतिबंधित किया है हमारे यहां सबसे ज्यादा वहीं बिक रही है। इसमें डाक्टर और मरीज दोनों की भूमिका है। वो भी चाहते हैं कि ऐसी दवाई डाक्टर लिख दे। डा. मोहन जोशी, डा. कमल ज्ञवाली के शोध में नेपाल में प्रयोग होने वाली 50–60 प्रतिशत दवाईया अनावश्यक हैं। ऑटो–बायोटिक मांगते है कही पर डाक्टर खुद देते हैं। कहीं–कहीं पर एक विटामिन से काम नहीं चलता दो–तीन की जरूरत है इसकी भूमिका भी इसमें महत्वपूर्ण है। फार्मेश्यूटिकल कंपनी के फायदे से प्रोफिट निर्धारित करता है।

हां सरकारी उत्पादन अच्छा है, विश्वसनीय है। लेकिन वो अपने भीतर भ्रष्टाचार में व्याप्त है। जब सिटामोल की जरूरत है तब जीवन जल उत्पादन करते हैं। और रॉयल ड्रग से उत्पादित दवाइयां दूकानदार बेचना भी नहीं चाहते, यह सब जरूरी है और सस्ते है।

ओवर मेडिकलाइज : स्वास्थ्य को इस समय ओवर मेडिकलाइज किया जा रहा है। शाम को थकान लगने पर दवाई बुखार आने पर एंटीबायोटिक लेने की आदत हो गयी है। प्राकृतिक समस्याओं के लिए भी आजकल दवाई का प्रयोग व्यापक रूप से बढ़ रहा है।

नेपाल में विदेशी सहायता

कपिल श्रेष्ठ

विदेशी सहायता का मूल्यांकन दो–तीन हिसाब से होना चाहिए। उसका सामाजिक प्रभाव कैसा है, यह हमारे समाज को विकास की दिशा में ले जाता है या समाज को विस्थापन करता है, किस तरह के सामाजिक परिणाम इसने दिये हैं, लोगों के एटिट्यूड में वैल्यू सिस्टम में संस्कृति में हमारे रिलीजन में कैसा प्रभाव पड़ा है, यह कोई नहीं देखता। इंस्टिट्यूशनल इम्पैक्ट को भी ठीक तरह से नहीं देखा गया गया है। इसमें भी सोशल इंस्टिट्यूशन्ज हमारे यहां परंपरागत रूप से विद्यमान संस्थायें, पहले–पहले जो गांव में, शहर में पुर्ननिर्माण के लिए जीर्णोद्धार के लिए सेल्फ हेल्प इंस्टिट्यूशन से लेकर नहर, रास्ता बनाने वाले इंस्टिट्यूशन में क्या प्रभाव पड़ा। जिनकी सर्टेनाफाइलिटी और कंटीनेंसी में जिस तरह के एयरऐबिलिटी आफ फौरन ऐड ने किस तरह का इंटरफेयरेंस किया है। इन सब बातों का विश्लेषण किसी ने भी नहीं किया है

विदेशी सहायता की नेपाल में क्या खास नियत है? यह ऐड है या चैरिटी है या यह एक ग्लोबल इनइक्वालिटी को सेक्टीफाई करने का कोई उपाय है?

भूमंडलीकरण तो हुआ है इस ऐड से लेकिन किस चीज का हुआ है? चाय पीने से लेकर दौरा सुखाल (परम्परागत नेपाली पहनावा़) छोड़कर जींस पैंट पहनने तक का, गौर से देखें तो नकारात्मक बाते सकारात्मक से बहुत कम दिखाई दी है, ऐसा हर एक क्षेत्र में हुआ है।

जनता के स्तर में : जनता को हमें यथास्थिति में नही रहना चाहिए, परिवर्तन व विकास संभव है ऐसी मानसिकता का विकास हुआ है, लेकिन ऐसी विदेशी सहायता के चलते हुआ है या नहीं इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। रिसेप्टीवीटी टो चेंज जरूर आया है। जिस तरह का भाग्यवाद 1950 से पहले था वह अब नही है, केंद्र की पहुंच जनता के स्तर पर है, जहां ऐड का कुछ हिस्सा पहंचा है जीवन में बहुत सी बातों में परिवर्तन आया है।

समाज में परिवर्तन तो चल रहा होता है, लेकिन ऐड ने उसकी गति बढ़ा दी है, इसको तेज किया है; विगत के 150 सालों में वह न हो सका जो इधर के पचास सालों में हुआ है। नयी–नयी संस्था से आयी हैं। पूरी तरह से नकारात्मक ही नहीं लेना चाहिए हेल्थ सर्विसेज बढ़ी हैं।

हमारा जैसा प्रचीन समाज दो हजार साल से भी पूराना समाज बिना किसी विदेशी सहयोग के जीवित रहा, इतनी उपलब्धियां की। पिछले पचास सालों की उपलब्धियां वीज–अ–वीज क्या हैं, कैसे तुलना की जाय? जैसे इधर के पचास सालों में कौन सी ऐसी कृति है जिस पर हम गर्व करें? यूनिवर्सिटी, पुल, सड़क, थलपुरका, न्यातपोल, हनुमान रढोका या पानी के सिस्टेम्स? पचास वर्षों में किया गया ऐसा कौन सा काम है जिस पर गर्व करें। मैं अभी जिस मानवाधिकार उद्योग में काम कर रहा हूं यह भी विदेशी सहायता पर ही अब तक निर्भर है।

क्या सौ–दो सौ साल बाद की हमारी संतान ऐसी कौन सी चीज पर गर्व करेंगी जिसको हम छोड़कर जा रहे हैं? पिछली जो सामंती व्यवस्था थी उसकी अपनी सीमाएं, कमजोरियां थी और उसके प्रति हमारा आलोचनात्मक दृष्टिकोण तो है ही लेकिन उस दौर में जो उपलब्धियां हासिल हुई थी, क्या इस वर्तमान व्यवस्था में विदेशी सहायता के सहयोग से हम उतनी उपलब्धियां हासिल कर पायें है?

पृथ्वी नारायण शाह ने काठमांडो जितने के बाद 1951 तक (1768–1951) का जो (डार्क एज) अंध युग था उसके बाद बुराइयां बढ़ी हैं लेकिन अच्छा कुछ भी नहीं हो सका। उसके बाद के पचास वर्षों को भी (1951–2000) ऐसे ही डार्क एज के रूप में लिया जायेगा।

विदेशी सहायता का फायदा लेने वाले परिवार में से एक मेरा परिवार भी है। मेरे पिताजी के बड़े भाई भी त्रैलोक्य नाथ लोगों के साथ पहले बैच मे ओरेगन यूनिवर्सिटी गये थे। इससे क्या परिवर्तन हुआ अपने परिवार में, देश में और समाज में? हर परिवर्तन के पीछे एक सकारात्मक संदेश होता है, यहां तो कुछ भी नहीं मिला निगेटीव भी नहीं। अमरीका गये, कुछ नयी किताबें लाए और नये ढंग से पढ़ाने लगे। ही वाज मिसअंडरस्टूड लोगों को पूर्व मेची से लेकर पश्चिम तक डिपेंडेंट बना दिया, जेने में ही डिपेंडेंसी पहुंचा दी। मानसिक और भौतिक दोनों ही स्तर पर हमारी समस्याओं का समाधान हम खुद ढूंढ सकते हैं, हम नहीं करेगें तो कौन करेगा की जो सोच होती है वह गायब हैं वह निर्भरता भी आम नहीं है बल्कि अभिजात वर्ग में है। लेकिन यही अभिजात वर्ग है जिसने मंदिर बनाया था, इनके पास ही संशाधन है। हर कहीं लोगों भ्रमित करने वाला यही अभिजात्य वर्ग है।

नेपाल में किसी भी राजनीतिक आंदोलन में क्यों ब्राह्मण और क्षत्री ही नेतृत्व में हैं? पीपल्स हैज बीकम द प्रीरोगेटिव डोमेन आफ दीज एलीट क्लासेज. रीच और पुअर ही हैज नॉट दैट सोशल प्रीवीलेज. प्रील..... वी हैव हीयर डैंड टो ट्रांसेंड द यूनिट्स दैट सोसाइटी हैज इम्पोज्ड आन अस. वी नीड वाट वी कैन ऑल अ ट्रांसेंडेंट जम्प. जो समाज का सोचने की प्रक्रिया को निर्धारित करता है विदेशी सहायता भी उसके हाथ में ही सीमित होकर रह जाती है। लेकिन फोरन ऐड ने इनको अलाइनिट किया है, अपनी जड़ों से (डिरेल) अकपथन किया है। गांव में जो पढ़ा लिखा क्षेत्री, नेवार, ब्राह्मण है वो दो स्तरों पर सोच रहा है। पहली सोच में वो नौकरी करना चाहता है। और दूसरी में विदेशी सहायता से संबंधित कुछ करने को सोचता है। कमर्शियल कैश कोर इंडस्ट्री में यह वर्ग वैश्विक प्रणाली में अपने आपको पृथक नहीं मानता है। चाहे वो जनेउ पहने या धोती पहनकर खाना खाये, यह वर्ग सब जानता है और बहुत चालाक है।

हमारे यहां अब तक जितनी भी सहायता आयी है, 60–80 प्रतिशत तक ऋण है यह चैरिटी के रूप में आयी है। लेकिन इस समय एक फैटिग शुरू हुआ है। विगत में शीत युद्ध के कारण तीसरी दुनिया के साथ संबंध जरूरी था लेकिन अब वैसी जरूरत नहीं है, व्यापार तो आपस में करना भी काफी है। विदेशी सहायता के आने के बाद हमारी परंपरिक प्रणालिया बुरी तरह ध्वस्त हुयी है, खत्म ही हो गयी है। विदेशी सहायता आसान विकल्प के रूप में मिली तो

मेहनत करने की जरूरत नहीं पड़ी। कंपोस्ट खाद बनाने की प्रक्रिया की जगह रसायनिक माल खाद प्राप्त हो गया। लर्नींग इंटरनलाइज प्रोसेस कुछ भी नहीं हो पाया। किसी मां के पेट में बच्चे को विकसित किए वगैर पा लेना विकास प्रक्रिया बन गई और विकास सरोगेट मदर की तरह आया।

मानव अधिकार आयोग में भी हमारी अपनी सोच कमा नहीं कर रही है। हमने अपना दिमाग लगाया ही नहीं है वो खेती प्रोजेक्ट हो या कोई और एवरीथींग हैज कम सेल्फ फिनिस्ड, फिनिस्ड प्रोडक्ट. वी हैव बीकम

इसके अलावा हमारी कोई भूमिका नहीं है।

तो क्या करना चाहिए?

दो बाते हैं, पहली बात तो हमारी जड़ों में क्या है, इसका पता होना चाहिए। हैंगिंग गार्डन आफ बेबीलोन तो नहीं हो सकता। पुराने समाज के नौ सौ में से नब्बे बातें तो अच्छी रही होंगी। हम लोगों ने कंटेंट से ज्यादा उनके स्वरूपों पर जोर दिया। दीज रूट्स हैव आइदर स्टोप्ड ग्रोइंग ऐंड हैज स्टार्टेड टो डीकम्पोज सिंस लास्ट वन थाउसैंड इयर एगो.

विदेशी सहयोग बहुत नुकासान देह है, मैं फंडामेंटलिस्ट दृष्टिकोण नहीं रखना चाहता। कभी–कभार की बात नहीं है। विदेशी पैसा नहीं रूकेगा लेकिन हमारी चीजें मूलभूत रूप से सुधर सकती हैं, यह धैर्य हमारे पास है, इतना आराम से चलने की स्थिति हमारी है। नेपाल जैसे छोटे देश के लिए यह संभव नहीं है। अंतर्विरोध और विरोधाभास तो सदा रहेंगे। सवाल है, कैसे इनको कम करके सकारात्मक दिशा में ला सकते हैं। न किसी चीज को पूर्णतया स्वीकार कर सकते हैं न अस्वीकार लेकिन समाज ने एक कोड आफ इथिक्स की जरूरत होती है। इसको बनाएगा कौन यह भी एक जटिल प्रश्न है, सभी क्षेत्र के लोगों को इसमें शामिल होना होगा केवल राज्य इसको नहीं कर सकता है। आत्म–निरीक्षण की जरूरत है, उपर से ही रोल मॉडेल बनने की जरूरत है। जैसे कपिल श्रेष्ठ को निजी सवारी साधन की क्या जरूरत है।

गैर सरकारी संस्थाओं के बढ़ने में और विदेशी पैसा आने पर मैं उतना चिंतित नहीं हूं। लेकिन इस समय जो आ रहा है उसमें 99 प्रतिशत बुरा और केवल एक प्रतिशत अच्छा है, इसको कैसे ठीक किया जाय, प्रश्न यही है। ड्रग एडिक्ट को यह काम मत कर रिहेबिलिटेशन केंद्र में जा कहने जैसा है। हम सोशियल कोड बनाने के लिए तैयार हैं या नहीं, एक वालिंट्री एजेंसी बनाने के लिए तैयार है या नहीं? गैह जिम्मेदार किस्म की स्वतंत्रता और अराजकता छोड़ देना जरूरी है। रेगुलेट करना जरूरी है, इस तरह की समान व्यवस्था में ऐसी कानून प्रणाली या लाइसेंसिंग से काम नहीं चलेगा। यूनिवर्सिटी के लोगों को कंप्यूटर चाहिए प्रोजेक्ट बना दिया, माओवादी क्षेत्र में जाने की इच्छा हुई तो प्रोजेक्ट बना दिया, पद चाहिए तो प्रोजेक्ट बना दिया, मानव अधिकार आयोग के माध्यम से नार्वे या डेनिस सरकार को मना लिया एच. एम.जी. श्रीपूर्का सरकार में जब तक हैं तो 200 का टिए डिए मिलता है विदेशी एड में जाते

ही हजार दो हजार का टिए डिए, सरकार ने राज्य मंत्री की तनख्वाह चौदह पंद्रह हजार है, एन.जी.ओ. में पहुंचते ही बीस–पचीस हजार चाहिए। गैर जिम्मेवार संस्कृति का विकास किया और कोई दृष्टिकोण विकसित न हो सका गैर सरकारी संस्थाओं ने एक पर आश्रित संस्कृति का विकास किया है, गांव में जा नही सके और सभी चीजें इंपोर्टेड होने लगी। इन संस्थाओं में ज्यादातर लोग सब्सटेंडेड है चाहे वो मानवाधिकार आंदोलन हो चाहे और कोई हर तरफ वही हो रहा है। आम लोगों की सहभागिता बहुत कम है। और विचार भी नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण बात राजनीतिक क्षेत्र की है, हिम्मत के साथ राजनीति करने के लिए रजानीति कार्यकर्ता बनकर, झोला लेकर आगे बढ़ भी नहीं सकते और उस मोह को त्याग भी नहीं सकते, राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ता की यह इनब्रीडिंग बहुत खतरनाक है।

गैर सरकारी संस्थायें अपनी विश्वसनीयता खो रहे हैं। इसलिए एन.जी.ओ. को अब मुश्किल हो रही है। बिना किसी नियंत्रण के गलत पैसे के हाथों से सही पैसा चल रहा है। सामाजिक परिवर्तन विदेशी पैंसों से नहीं होता, परिवर्तन भीतर से ही आना चाहिए। बड़े स्तर पर होने वाला सामाजिक परिवर्तन विदेशी सहयोग नहीं करता। नार्थ में अच्छे एन.जी.ओ. नहीं है ऐसा नहीं है लेकिन उनका परिवेश ही ऐसा है कि सामाजिक परिवर्तन के लिए काम नहीं कर सकते। उत्तर में चाहे कितना ही जेनुइन एन.जी.ओ. क्यों न हो उसके पैरामीटर्स कौन निर्देशित करता है। जो सकारात्मक किस्म के एन.जी.ओ. हैं उनका स्रोत भी वही डोमिनेंट हैं। और यदि आप चैलेंज करेंगे तो स्रोत या कम होंगे या बंद होंगे। स्रोत का श्रृजन तो कभी भी अधिकता से होता हैं। जिसके पास जितना अधिक होगा वो उतना ही ज्यादा दे सकता है। उत्तर में भी यह समस्या है उन लोगों के एजेंडे में परिवर्तन होते ही उनको बड़ी समस्या हो जाती है। आप किसी भी दक्षिण की ओर केंद्रित उत्तरी गैर सरकारी संस्था को पूछ सकते हैं, वास्तव में यह सभी संस्थायें इस स्रोत संकट से ग्रसित हैं। यह संस्थाएं जितना रैडिकल एजेंडा लेकर आगे बढ़ने की कोशिश करती हैं उतना ही स्रोत घटता जाता है। और जितना सुपरफिशियल एजेंडा लेती है उतना बढ़ता जाता है। इसलिए यहां के सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरी एन.जी.ओ. में निर्भर होना रिस्की है।

टोटल डिपेंडेंसी सिंड्रोम से हमें बाहर निकलना होगा। हमें आने वाले कुछ दशकों तक गरीबी और विपन्नता में जीने की हिम्मत करनी चाहिए। सौ डॉलर के बदले बीस डॉलर लेगें तो 80 डॉलर एक बार में कम हो जाते हैं। और 20 डॉलर से सौ डॉलर का काम लेने की कोशिश करनी चाहिए। जैसे कभी घर में पानी नहीं आता तो जितना घर में उपलब्ध है उसी से काम चलाते है, ऐसा ही करना होगा। हमें यह काम व्यक्तिगत स्तर पर शुरू करना चाहिए। व्यक्तिगत स्तर पर कैसे हो सकता है? यह प्रश्न आपका हो सकता है पर सामाजिक स्तर पर जाने के लिए व्यक्ति के माध्यम से ही जाते है। कॉन्सेंट्रीक चक्र के रास्ते व्यक्ति से समाज की ओर जाने की प्र्रि0216या है, सीधे समाज में नहीं जाया जा सकता है।

हमारे पास जो सबसे बड़ा स्रोत है वह है गुडविल रिसोर्स, हम जनता का परिवर्तन की दिशा का विश्वास, कल्पनाशीलता और गुडविल खो रहे हैं। हम लोगों के ऊपर जबर्दस्ती ऐसे विचारों को थोप रहे हैं। हमने अपनी सफलताओं और असफलताओं को कभी भी ठीक ढंग से

हल करने की कोशिश नहीं की है। हमने डाक्युमेंट नहीं किया है। पिछले पचास सालों का भी डाक्युमेंट नहीं किया है। बैरियर्स न ब्रिज्स बनाते हैं। और विदेशी सहायता ने बैरियर्स बनाने में सहायता ली है, ब्रिज्स बनाने में नहीं। मेरे अपने बचपन से अब तक दोस्त है पड़ोस में उसने अपने घर के चारों ओर दीवार खड़ी कर दी है। मना नहीं कर सकते। चार गज जमीन है तो नौ फिट की दीवारें बनायी जा रही हैं। गली, चौक घट रहे हैं दीवारें बढ़ रही हैं। भौतिक और मानसिक दोनों ही दीवारों का खत्म होना जरूरी है, वह सब विदेशी सहयोग के कारण हो रहा है। यह सब अब गांव में भी होने लगा है। किसी भी दीवार की ऊंचाई पांच फीट ही होनी चाहिए हमारी हाइट यही है बल्कि एक फीट कम ही हो तो बेहतर है।

विदेशी सहयोग से हमारे बीच दोहरा मापदंड खड़ा कर दिया है। कहने के लिए एक बात है करने के लिए दूसरी, एक–दो आधारभूत सवालों पर कुछ करना शुरू करेंगे तो धीरे–धीरे चीजें आगे बढ़ेंगी। पर–निर्भरता कम करते हुए हमारे अपने स्रोतों को प्रयोग में ले जाना है, विकास धीरे–धीरे होगा। जादू की छड़ी की तरह एक बार में नहीं होगा। एक सामान्य और छोटा विकास तरंग पैदा कर देता है। स्थानीय स्तर से केंद्र तक, किसी भी क्षेत्र में प्राथमिकतायें अस्त–व्यस्त हैं। डब्ल्यू.टी.ओ. की सदस्या लेना है, ट्रूमा सेंटर बनाना है आदि, हम लोग ऊपरी बाते ज्यादा कर रहे हैं। लारेंटेड बातों में ज्यादा ध्यान दे रहे हैं, सब्सटेंस से ज्यादा सतही बातें हो रही है। रिचुअल्स में ज्यादा जा रहे हैं, विकास एक किस्म का कर्मकांड बन कर रह गया है।

नेपाली समाज, पूर्वीय समाज या हिन्दु समाज को इसी कर्मकांड ने बिगाड़ा है। हमें नये शिरे से दिशा परिवर्तन करते हुए इस सबको डिरिचुअलाइज करने की जरूरत हैं उद्घाटन, शिलान्यास, गोष्ठी कहते रहे हैं...

डा. चैतन्य मिश्र से बातचीत

प्रश्न : नेपाल में विदेशी सहायता के सवाल पर किस प्रकार की बहसें और विश्लेषण हुआ है? ये बहसें कितनी सार्थक हैं?

विदेशी सहायता की शुरूआत पांच दशक पहले हुयी थी। इस बीच में इसकी बहुत चीरफाड़ भी हुयी है। अमेरिकियों का हाल में किया गया अध्ययन है– यू.एस.ए.आई.डी (USAID) के विकास के चार दशक। मिहाले (Mihely) का Foreign Aid in Nepal (1961) है। इसके बाद इस विषय पर शोधकार्य भी बहुत लिखे गये हैं। Chinese Aid, Idian Aid, American Aid और World Aid इन सबके ऊपर लिखने का काम भी हुआ है। अर्थशास्त्रीयों ने अलग–अलग क्षेत्रों से विश्लेषण किया है। जैसे कृषि में क्या हुआ, उत्पादन में क्या हुआ, इन सभी बातों पर एक किस्म का विश्लेषण हो चुका है। नारायण खड़का की विदेशी सहायता से संबंधित जीमेपे किताब के रूप में छप चुकी है। ऐसे ही 1983 में प्पै के सेमिनार के बाद छपि किताब थ्वतमपहद ।पक ंदक क्मअमसवचउमदज पद छमचंस में भी इस विषय पर कई कोणों से विश्लेषण किया गया है। हां इसके बाद ये विश्लेषण रूक गया है। अलग–अलग तो हैं पर एक संगठित रूप में नहीं है।जैसे देवेन्द्र राज पांडे का छमचंसश्े थ्पसमक क्मअमसवचउमदजए ैजंबल च्पहह का लेख, नंद श्रेष्ठ का प्द जमी दंउम वि कमअमसवचउमदज से संबंधित ंतजपबसमए कुछ लिखे गये हैं। सीधे थ्वतमपहद ।पक को इंगित करके नहीं लिखा पर छळव्े के थ्वतमपहद ।पक का ।बजपवद है, इस पर मैने कुछ कहा है, लिखा है। फिर भी मैं हमारे कई वामपंथी कम्युनिष्ट मित्रों की तरह आलोचनात्मक नहीं हो सका। जो भी हो इस पर हमारी पहल ;प्दजपंजपअमद्ध बिल्कुल भी नहीं हुयी है। थ्वतमपहद ।पक को कैसे प्रयोग में लाया जाय, किससे लेना है? इस विषय में राष्ट्रीय तो दूर की बात पार्टीगत एकरूपता भी नहीं बन पायी। थ्वतमपहद ।पक त्मपहउमए इस तरह ।क. ीवब के रूप में मजबूत होते चला गया कि पार्टीयों के भीतर इसकी क्मइंजम भी नहीं हो पायी। अपनी सफलता यहां कितनी ज्यादा विदेशी सहायता ला सके इस बात से होने लगी है और ऐसे ही इसको श्रनेजपपिबंजपवद करने का काम हुआ है। सरकार से बाहर होते ही या मंत्री पद से हटने के बाद 'जरूरत के क्षेत्रों में ही केवल विदेशी सहायता ली जानी चाहिए कहकर बुजुर्गपना दिखाने का काम हुआ है। लेकिन क्या चाहिए और क्या नहीं, इस बारे में स्पष्ट बहस कभी नहीं हुयी।

प्रश्नः यह इतना महत्वपूर्ण विषय है लेकिन इसको लेकर क्यों आवश्यक बहस और बातचीत नहीं हुयी?

पार्टी के भीतर कि अगर आप बात कर रहे हैं तो पार्टी में सभी को पैसे की जरूरत है। वोट खरीदने के लिए, और ये पैसा पार्टीगत रूप में नहीं चाहिए, जहां अपना चुनाव क्षेत्र है वहां के लिए चाहिए। ये बात नेपाल की सभी mainstream पार्टियों के लिए लागू होती है। इसमें माओवादिओं के अलावा सभी आते हैं, यहां कोई भी पार्टी mainstream से बाहर है ऐसा मुझे नहीं लगता।

इतने सरल रूप में इसको देखा जा सकता है कि पार्टियों को पैसा चाहिए इसीलिए Foreign Aid लेना है, यह बात बहुत सामान्य सी लगती है।

इतनी बात काफी नहीं है लेकिन ठीक ढंग से विचार विमर्श करके किसी निष्कर्ष पर पहुंचने का काम नहीं हुआ है। जनता को आधारभूत संरचना की जरूरत है, अच्छी बात हैं लेकिन मैं वोटों को बटोरने के बारे में कह रहा था। पार्टियों को वोट चाहिए और इसको माध्यम बनाया जा रहा है। इस बात को पूरी तरह से अवैद्यानिक नहीं कहा जा सकता। लेकिन इसको किस ैमबजवत में जाना चाहिए और कितना मंपिबपमदजसल खर्च हुआ है, इन आधारभूत सवालों पर बहुत कम ध्यान गया है।

प्रश्नः बहस की परंपरा क्यों नहीं बसी, यह अंर्तनिहित चरित्र तो नहीं है?

राजनीतिज्ञों का तो अंर्तनिहित चरित्र ही है। इस संसदीय पूंजीवाद और इस विकास प्रक्रिया के भीतर दुनिया के साथ जिस तरह का प्दजमतंबजपवद होता है, और वर्तमान पूजीवादी विश्व और उसके साथ के हमारे संबंध को जिस तरह से हम ले रहे हैं उसमे जो अभी हो रहा है उससे कुछ अलग तरह का होने की संभावना नहीं है। इसको उकपलि करना चाहिए यह बात दूसरी है। इसके लिए हटकर सोचने की जरूरत है। अन्यथा थोड़ा बहुत पिदम जनदम किया जा सकता है, इसी स्तर की सोच संभव है।

पिछले चार पांच वर्षो में इधर कुछ परिवर्तन आया है, ऐसा लगता है। कल दो लेख पढ़े, एक कांतिपुर दैनिक में छपा रामचन्द्र पौडेल का है। उसमें विकास के क्षेत्र में हमारे काम असफल हुये हैं और हमें थ्वतमपहद ।पक के सवाल पर पुर्नविचार करना जरूरी है, इसके बारे में गंभीर बहस की आवश्यकता है, ऐसा आग्रह है। एमाले नेता झलनाथ खनाल भी इस बीच लगातार कई पेपर और मैगजीन में लेख लिख रहे है जो इसी विषय से संबंधित है। हाल ही में एक 'समाचार पत्र' में और कांतिपुर में छपा हैं मेरा सवाल क्या पार्टियों के भीतर इस विषय पर बहस बिल्कुल भी संभव नही हैं? ऐसा है या इसके लिए काम नहीं किया गया? और ये एक अंर्तनिहित चरित्र है, कहने से क्या हम इस निष्कर्ष पर नहीं चले जाते कि संसदीय व्यवस्था जब तक रहेगी तब तक बहस नहीं हो सकेगी?

एक मोड़ आएगा, एक Critical point आयेगा। इस समय वर्तमान संसदीय व्यवस्था में एक परिवर्तन होगा जो इससे मजबूत भी हो सकता है और कमजोर भी, मैं इस समय की बात कर रहा हूं जैसे यह चल रहा है। और इस अवस्था में इससे बेहतर बातचीत नहीं हो सकती है।

प्रश्नः संसदीय व्यवस्था के परिवर्तन से इसमें परिवर्तन होगा, ऐसा आपने कहा। काम करने के तरीके की बात आप कह रहे हैं या इससे आने वाले विषय वस्तु कि बात आप कह रहे हैं?

दोनों हो सकते हैं। यह भी एक संगीन घड़ी पर पहुंचेगा। जैसे इस समय की बात करें तो एक आंदोलन के उठ खड़े होने पर माओवादी ही जितेंगे, निश्चित तौर से ऐसा नहीं कहा जा सकता है। लेकिन परिवर्तन होगा। वर्तमान संसद और अधिक मजबूत होगी, राजा के हाथ में शक्ति जायेगी या ऐसे खत्म नहीं भी हो सकता है। लेकिन ये संसद जैसे चल रही है ऐसे ही आगे नहीं चल सकती है। इसलिए आगे एक मोड़ तो जरूर आएगा, ये कब आयेगा नहीं मालूम। जब तक ये परिवर्तन नहीं होगा, तब तक अखबारों में ये लोग कितना ही लिखे इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

व्यक्तिगत तौर पर यह लोग एक तरह से सोचेंगे। सारी जनता कह रही है। इनके सिर में कैसे नहीं आयेगा और इससे भी महत्वपूर्ण बात है इन लोगों ने व्यक्तिगत स्तर पर वह सब देखा है। पौडेल जी, I think he is one of the most sincere people around, उन्होंने खुद कहा है कि कैसे हमे धोखा दिया गया और कैसे उन लोगों ने अपनी बात हमारे उपर थोप दी, कैसे उन्होंने इसका विरोध किया। ये बाते जरूर हुई होंगी, जब वो कह रहे हैं तो वो झूठ बोल रहे हैं ऐसा नहीं लगता। लेकिन इस संरचना के भीतर इस बात के सहारे आप किनारे तक नहीं पहुंच सकते। इसलिए जैसे जनता के जो सवाल हैं, हमारे सवाल हैं ऐसे ही राजनीतिक पार्टियों के लोगों के भी अपने सवाल तो हैं ही। लेकिन इन सवालों को ये लोग वहां तक नहीं पहुंचा पाते है जहां पर इनका जवाब मिले और इस जवाब को क्रियान्वयन किया जा सके। यहां तक ये लोग नहीं पहुंचाते हैं।

प्रश्नः ये बात पार्टियों के स्तर पर हैं, लेकिन पार्टियों से बाहर भी उतनी बहस नहीं हो रही है जितनी होनी चाहिए? ऐसा क्या?

पार्टियों से बाहर संगठित रूप से बहस न हो पाने के कई कारण हैं। अस्सी के दशक में राज्य अपने आप स्वतंत्र ढंग से अपना रास्ता तय कर सकता है ऐसी सोच व्याप्त थी। मैं भी इसी में था, अब ये भीड़ खत्म हो गयी हैं अब दो तरह के लोग दिखाई दे रहे हैं। एक विश्व अर्थतंत्र के भीतर से कुछ किया जा सकता है, सोचता है। दूसरा जो व्यापक हित के लिए क्यों त्याग, समर्पण किया जाय जितना भी हो मेरे लिए हो सोचने वाले लोग हैं।

यहां लिखने और बोलन वाले बहुत कम लोग हैं। इनमें से अधिकतर लोगों को लगता है मैं क्यों आलोचक बनूं? इससे तो मेरा ही रास्ता बंद होगा, ये बिल्कूल व्यक्तिगत सोच के कारण ऐसा हुआ है। इन लोगों के सथ समझ की कमी जैसी कोई बात नहीं हैं, ज्ञान की कमी समस्या नहीं है। दूसरी बात यह किसी एक आदमी की बात नहीं है, आम बात है। यही बात हर तरफ हो तो फिर एक दो लोग कहा तक ले जा सकते हैं।

विदेशी सहायता का जो स्वरूप है– इसकी आने की प्रक्रिया, इसके उपयोग का क्षेत्र प्राथमिकता के निर्धारण करने की प्रक्रिया है। इसमें कैसे सुधार किया जा सकता है।

His majestry govt. ही Foreign Aid Policy बनाने जा रही ह। जहां तक मेरी जानकारी है इसके दो ड्राफ्ट तैयार हो गये हैं। नेपालियों के लिए तो खुला नहीं है। लेकिन विदेशियों के लिए खुला है। नेपालियों क लिए है ही नहीं ऐसा तो नहीं हैं पर ऐसी नियत भ्डळ की नहीं दिखायी देती। लेकिन पूरी तरह से बंद नहीं है। इसीलिए मैने भी पढ़ा। Document के हिसाब से अंत तक सकारात्मक पहलूओं की रहने की उम्मीद कम है।

प्रश्नः विदेशी सहायता कैसी होनी चाहिए?

वह इस समय की वास्तविकता है। पहले का जैसा नहीं रहा। इस समय यह मुख्य रूप से ऋण के तौर पर आता है। अनुदान बहुत कम हो गया है। Secular Trend का मतलब व्यापार ही है, अनुदान नहीं। दीर्घकालीन बवदबमेपवदंस ऋण है, इसमे भी 80–90 के दशक से विश्व बैंक ने अपनी शर्तो के साथ देना शुरू किया है।

दुनिया में कई किस्म की अर्थ व्यवस्था और देश हैं। Safety-net एक स्तर की आय के बाद कुछ बढ़ाकर लागू किया जा सकता है, हालांकि यह कम आय वाले देश में लागू न हो सकने

वाली बात नहीं हैं। लेकिन फिर भी सामान्यतया एक स्तर की आय व्यवस्था में पहुंचने के बाद लागू होती है। हम इस अवस्था में नहीं है। हमारे सामने गरीबों को दो 'माना' चावल (1Kg) देने के लिए इस अर्थतंत्र क भीतर से कितना कर पायेंगे, ये सवाल है।

विदेशी सहायता के संबंध मं एक विमर्श निकालना जरूरी है,जो अभी तक नहीं हुआ है। हमारे देश और विश्व के परिप्रेक्ष्य में एक बहस नये सिरे से शुरू करने की जरूरत है, शायद वह शुरू नहीं होगी।

प्रश्नः क्यों?

पार्टी, बुद्धिजीवी, व्यक्तियों की अपने किस्म की विदेशी सहायता के साथ जांम होने के कारण।

प्रश्नः हमें इस बहस की शुरूआत कैसे करनी चाहिए?

विदेशी सहायता नहीं लेनी चाहिए, मैं इसका पक्षधर नहीं हूं। लेकिन क्यों लेना चाहिए? कैसे लेना चाहिए? और इसको कैसे संचालित किया जाय, इस विषय में हमें सोचना चाहिए। वास्तव जो गोरे लोग स्वामित्व की बात करते है वो यही है, उनको तो केवल कहना है, सैद्धांतिक स्तर पर यह बात ठीक भी है। लेकिन जब वो अपनी सहायता यहां अंदर नहीं पहुंचा सकते तो उनका आफिस बंद हो जाता है और नौकरी चली जायेगी। इसलिए कई एजेंसियां कम पैसों की बात नहीं करती। ये प्दमपिबपमदज होता है, इसका हिसाब रखना भी झंझट से कम नहीं है।

इन विषयों पर हमारे अपने प्रयास ठीक तरह से नहीं हुये, इसके उदाहरण दिये जा सकत हैं। विदेश सहायता से संचालित परियोजनाओं के मूल्यांकन प्रतिवेदनख कार्यन्वयन प्रतिवेदन या उवदपजवतपदह प्रतिवेदन सभी देखिए। खास तौर से मूल्यांकन प्रतिवेदन को, भ्डळ का कोई भी निकाय इसे नहीं लिखता। इसके लिए जिम्मेवार कोई निकाय भी नहीं है। हर मंत्रालय में 'योजना शाखा' नाम से एक अंग होता है लेकिन यह काम इससे नहीं होता क्योंकि सबसे असक्षम लोगों को यहां रख दिया जाता है।

जन आंदोलनों के बाद वामपंथी पार्टीयों की भूमिका

एक अनपेक्षित टिप्पणी

पीताम्बर शर्मा

1990 के अन आंदोलन के माध्यम से नेपाली जनता ने तीन प्रमुख अपेक्षाए रखी थी। पहली राजनीतिक और सामाजिक अवस्था में आमूल संरचनात्मक परिवर्तन, दूसरी राष्ट्रपति, जन उत्तरदायी सरकार और तीसरी बहुलवाद की प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति। इसीलिए गए दशक में राजनैतिक और आर्थिक विकास की प्रक्रिया में वामपंथीयों की भूमिका को इन्हीं अपेक्षाओं के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। 1990 के बाद नेपाल के आर्थिक अवस्था में आमूल संरचनात्मक परिवर्तन का नारा सिर्फ वामपंथी पाटीयों ने दिया है, इसके साथ जुड़ा हुआ वह दूसरा पक्ष है। नेपाली राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद को प्रमुख मुद्दा बनाकर आंदोलित रहने का आग्रह भी वामपंथीयों का रहा है।

इस लेख का उद्देश्य 1990 के जन आंदोलन से की गयी अपेक्षा और इस संदर्भ में वामपंथीयों की भूमिका के कुछ पहलुओं का विश्लेषण करना है। वामपंथीयों की भूमिका को देखने का एक सहज कारण है। वो, जन आंदोलन की अपेक्षाओं के संदर्भ में नेपाल का वामपंथ ही ऐसी शक्ति के रूप में दिखाई देता है जो इन उपेक्षाओं की प्राप्ति में निर्णायक और आधारभूत भूमिका खेल सकता है।

बहुलवादी प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति के सवाल पर वामपंथीयों के बीच गहरे मतभेद हैं। अग्र वामपंथी समुहों ने बहुलवादी प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति और आमूल संरचनात्मक परिवर्तन के विरोधाभास के यथार्थ को आत्मसात करने के बाद इस राजनीति को छोड़ चुके हैं। दूसरी तरह के लोग बहुलवादी प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति को केवल तत्कालीन फायदों के लिए उपयोग कर रहे हैं। सबसे बड़ी वामपंथी पार्टी/समूह के विचार से वह भी लोक कल्याणकारी, शोषण रहित और समता मूलक समाज के लिए किये जाने वाली 'क्रांति' का एक रूप है। इसीलिए यह लोग इस व्यवस्था के प्रति पूर्णरूप से वचनबद्ध है।

विगत दशक में वामपंथीयों द्वारा निर्वाह की गयी भूमिका का मूल्यांकन करते समय आमूल संरचनात्मक परिवर्तन से संबंधित इनके नारों और व्यवहार को देख लेना जरूरी है। नेपाली राष्ट्रीयता की सोच और राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति को समझ लेना जरूरी है। सैद्धांतिक दृष्टिकोण और व्यवहारिक रूपांतरण के माध्यम को चिन्हित करना जरूरी है। इन बातों के संदर्भ में गत् दशक के अनुभव बहुत ही निराशाजनक रहे। बहुलवादी प्रतिस्पर्धात्मक धार को स्वीकारने वाले कोई भी राजनीतिक पार्टी या समूह इस बारे में अपना स्पष्ट दृष्टिकोण विकसित नहीं कर पाये हैं।

ऐसा क्या हुआ? वामपंथीयों की की गयी अपेक्षा के अनुरूप व्यवहार क्यों नहीं मिला? क्या यह सही मायने में संसदीय फिसलन में डुब गये हैं और इनसे क्रांति व संरचनात्मक परिवर्तन की

अपेक्षा करना निरर्थक हो गया है? जन आंदोलन की संघर्षता और नेपाली वामपंथी आंदोलन के भविष्य के लिए इन बातों पर गौर करना जरूरी है।

गत दशक में राष्ट्रीय राजनीति में वामपंथीयों की उपस्थिति सशक्त रही लेकिन इसके बावजूद सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवर्तन के दृष्टिकोण से इनकी उपस्थिति निरर्थक रही। जनजीविका, बेरोजगारी, महंगाई, भ्रष्टाचार, कानूनी अधिकारों के साथ खिलवाड़, सुशासन और गरीब तबकों के लिए राहत या समग्र में कहा जाए तो संरचनात्मक परिवर्तन के लिए पूर्वाधार खड़ा करने में वामपंथीयों की भूमिका प्रभावहीन रही हैं। इसी प्रभावहीनता के कारण उग्रवामपंथी शक्ति का उदय हुआ है, यह एक तर्क माना जा रहा है। यदि ऐसा है तो उग्रवामपंथीयों द्वारा की गई रणनीति के बारे में कोरी भाषणबाजी आलोचना से कुछ होगा। बहुदलीय प्रतिस्र्धात्मक राजनीति के माध्यम से अपेक्षित राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक संरचनात्मक परिवर्तन की वैकल्पिक रणनीति और उसकी कायान्वयन की दिशा स्पष्ट करना जरूरी है। इस संदर्भ में वामपंथीयों की प्रभावहीनता तीन पक्षों में दिखाई देती हैं। पहली संसद और क्रांति, दूसरी राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद, तीसरी आस्था और सिद्धांत की राजनीति।

संसद और क्रांति : संसदीय पद्धति को स्वीकार करने वाले वामपंथीयों की पहली समस्या है संसद और आमूल परिवर्तन या सामाज के आर्थिक, राजनैतिक क्रांति को एक साथ निर्वाह कैसे करें,? संसद के माध्यम से संरचनात्मक परिवर्तन केवल उस वक्त संभव है जब वामपंथी पार्टी या वामपंथी पार्टीयां बहुमत में हों। संसदीय प्रणाली को स्वीकार करने वाले वामपंथीयों का व्यवहार बीते दशक में इसी सोच से निर्दिष्ट रहा है। इसके कारण वामपंथी चुनावमुखी ज्यादा और परिवर्तनमुखी कम हो गये। संसद को राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र मान लेने के बाद वामपंथीयों का संरचनात्मक परिवर्तन का मिशन ??????? हो गया।

वामपंथी सांसदों में सुविधाभोगी प्रवृत्ति बढ़ा है। सांसद अपने आपको किसी खास उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील 'मिसनरी' के बदले नौकरी करने वाले व्यक्ति के रूप में खड़े हो गये। अपनी सुविधायें बढ़ाने में, पेंशन और फोर्स की सुविधा लेने में ज्यादातर वामपंथी सांसदों ने अहम भूमिका रही। शहरों में बड़े–बड़े महल बनाने में नेतृत्व वर्ग का ध्यान केंद्रित होना निश्चय ही क्रांति का संकेत नहीं था। संसद मध्यम वर्ग पैदा करने की जमीन बनगर रह गयी। वामपंथी विचारधारा मध्यम वर्ग के लिए अपनी झोली भरने के अलावा कुछ नहीं बन सकी। बहुसंख्यक असक्त गरीबों के सामाजिक, आर्थिक जीवन के कटु यथार्थ और उसके निराकरण के लिए आवश्यक संरचनात्मक परिवर्तन व विकास की इच्छा वामपंभ्यिों के संसदीय पैक्टिस में कहीं भी अभिव्यक्त नहीं हुयी। छोटी–छोटी बातों को लेकर स्थगित की जाने वाली संसदीय कार्यवाही भूमि सुधार और महिलाओं के बराबरी के हक के लिए कभी नहीं रोकी गयी। अपनी बहुमत की सरकार जब तक नहीं बन जाती, संसद में संरचनात्मक परिवर्तन के लिए कैसी पहल की जानी चाहिए इसकी कोई रणनीति वामपंथी तैयार नहीं कर पाये।

संसदीय प्रैक्टिस और 'क्रांति' के उद्देश्य को एक साथ कैसे प्राप्त करें इस गंभीर सवाल के समाधान के लिए दो बातों में स्पष्ट होना जरूरी हैं पहला है संसदीय रास्ते से संभव

संरचनात्मक परिवर्तन की दृष्टि। इस तरह के विजन के लिए सत्त में पहुंचना जरूरी नहीं है। लेकिन इस काम को करने के लिए वामपंथी नेतृत्व समूह प्रयत्नशील नहीं दिखाई देता है। दूसरा, संसदीय या गैर संसदीय काम में से किसको प्राथमिकता देनी है? सत्ता प्राप्त करने का माध्यम संसद है लेकिन संसद में पहुंचकर जिन कामों को किया जा सकता है उनका पूर्वाधार गांव और जिले के स्तर पर संचालिक कार्यक्रमों के माध्यम से ही हो सकता है, इस यथार्थ को वामपंथी नेतृत्व अधिक समय तक भूले रहे हैं, ऐसा लगता है। नेतृत्व द्वारा अधिक समय और साधन खर्च करने से कार्यकर्ताओं से दूरी बढ़ती गयी, अंतर बढ़ता गया। नेता अपने आपको नव सामंतों के रूप में देखने लगे और कार्यकर्ताओं को हल चलाने वाले, जनता केवल बहाना बनकर रह गयी। वास्तव में उनको साधन और साध्य दोनों होना चाहिए था।

संसदीय प्रैक्टिस को प्राथमिक्ता में रखने के कारण संरचनात्मक परिवर्तन के लिए स्थानीय स्तर पर निर्माण किये जाने वाले पूर्वाधारों का उपेक्षित होना स्वाभाविक था। जिसके फलस्वरूप अधिकांश स्थानीय वामपंथी नेतृत्व सामाजिक व्यवहार और रूढ़ीगत परंपराएं, स्थानीय आर्थिक विकास और जननीविका, स्थानीय स्तर की वर्गीय संरचना और उसके राजनैतिक परिवर्तन के लिए कोई सोच नहीं बना पाये। हाल देश के लगभग 60–65 प्रतिशत कार्यकर्ता और स्थानीय निकायों के वामपंथी प्रतिनिधियों को या तो अपने 'मिशन' की जानकारी नहीं है या उनकी चिंता का विषय नहीं है। उनकी कार्यशैली और प्राथमिकता गैर वामपंथी प्रतिनिधियों से किस अर्थ में अलग नहीं है।

राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रवाद : नेपाल के वामपंथी अपने आपको राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद के पक्षपोषक के रूप में प्रस्तुत करते आये हैं। लेकिन नेपाली राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद का ऐतिहासिक और समसामयिक विश्लेशण करना, उस विलेषण को अपनी नीति और कार्यक्रम के माध्यम से मुखरित करने के काम में वामपंथीयों की भूमिका स्पष्ट और एकरूपता नहीं है।

नेपाली राष्ट्रीयता राष्ट्र–राज्य के रूप में नेपाल के विकास में एक प्रमुख नेतृत्वकारी कारक है। हमारा देश कई भाषा, धर्म, संस्कृति और वेशभूसा की जनजातियों से भरा आंगन कहा जाता हैं लकिन क्या इस आंगन में सभी जात–जातियों, धर्म और संस्कृति की अपनी विशिष्ट और सामूहिक पहचान है? अनेकता के संरक्षण में एकता की अभिवृद्धि कैसे करें? नेपाल राष्ट्र के आइने में सभी जात–जाति अपनी आकांक्षा की प्रतिबिम्बित कैसे कर सकते है? इस अवस्था को निर्माण कैसे हो? इस विषय में वामपंथीयों की सोच व्यवहारिक और परिपक्व नहीं दिखाई देती। फलस्वरूप इन लोगों ने जैसे अतिवादी जातिय आंदोलन को सहयोग किया है ऐसे ही यथास्थितिवादी नेपाली राष्ट्रयता का विकल्प खड़ा करने के काम की उपेक्षा की है। यथास्थितिवादी नेपाली राष्ट्रीयता की अवधारणा किसी जाति, धर्म और संस्कृति पर आधारित को राष्ट्रीय पहचान मानती आयी है।

नेपाली राष्ट्रवाद के बारे में बात करते समय 1989 में व्यापार और पारवहन संधि की समयावधि खत्म होने का बहाना लेकर भारत की ओर की गयी एकतरफी नाकाबंदी का संदर्भ भी महत्वपूर्ण है। इस नाकाबंदी के समय (जब नेपाल में राजशाही और पंचायती व्यवस्था थी)

नेपाली राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय स्वाभिमान निरीह बनने की बात पुष्ट होती है। इसीलिए 1990 के बाद अपने आपको जन उत्तरदायी और एक समर्थ, सबल राष्ट्र बनाने की बड़ी जिम्मेवारी नेपाल राष्ट्र के सामने खड़ी हो गयी थी। लेकिन इस दिशा में भी वामपंथीयों की भूमिका सकारात्मक नहीं हो सकी।

इस समय नेपाली अर्थतंत्र पूरी तरह धरायशी है। भारतीय बाजार का निर्वाध विस्तार सुनिश्चित है। भारत के साथ 1950 की संधि से स्थापित 'विशेष संबंध' यथावत है। व्यापार संधि में नेपाली बाजार के लिए कुछ छूट जरूर दिखयी देती है लेकिन नेपाली उत्पादन भारतीय बाजार में प्रतिस्र्धा नहीं कर सकता, इसके कोई आधार नहीं है। अर्थतंत्र की सबलता का माप आर्थिक वृद्धि दर,, अत्यावश्यक बस्तुओं के उत्पादन और वितरण में आत्म निर्भरता, व्यापार संतुलन की स्थिति और समाज के सबसे निचले तबके की आर्थिक जीवन की स्थिति और स्तर हैं। इनमें से किसी भी क्षेत्र में एक राष्ट्र के रूप में हम पहले से सबल हैं, ऐसा कहने की स्थिति नहीं है।

वामपंथी शुरू से ही 1950 की संधि को पुनरावलोकन और पुर्नलेखन के संबंध में मुखर होकर आवाज उठाते रहे हैं। 1990 के बाद वामपंथीयों की पहल में संधि के पुनरावलोकन के लिए औपचारिक प्रस्ताव भारत के सामने रखा गया। लेकिन नयी संधि का स्वरूप कैसा हो, नयी संधि के माध्यम से नेपाल भारत संबंधो को कैसे स्थापित करना चाहिए, इस विषय में वामपंथीयों के बीच वैचारिक स्पष्टता नहीं दिखाई देती है। खुली सीमा और दोनों देशों की बीच निर्वाध आवागमन को कैसे व्यवस्थित किया जाए? भारम में रह रहे नेपाली मूल के और नेपाल में रहे रहे भारतीय मूल के लोगों की नागरिकता (सीटीजनशीप) की समस्या कैसे हल हो? दोनों देशों के बीच विद्यमान प्रवासन का व्यवस्थापन कैसे हो? 1947 की नेपाल–भारत–ब्रिटिश सरकार के बीच की गोर्खा भर्ती संबंध में त्रिपक्षीय समझौते के बारे में क्या होना चाहिए? यह सब ऐसे प्रश्न हैं जिनके बारे में वामपंथी पार्टीयों के बीच स्पष्ट सोच की कमी है। इससे भी चौकाने वाली बात तो है कि इन विषयों को लेकर राष्ट्रीय बहस की पहल भी वामपंथीयों ने नहीं की है।

यदि राष्ट्रवाद को अपनी पहचान की सुरक्षा करने का माध्यम बनाना है तो इसके अनुरूप आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक विकास की नीतियों में राष्ट्रवाद अभिव्यक्त हुनुपर्द। लेकिन वामपंथीयों के पास इसका अभाव हैं उदाहरण के लिए जलशक्ति के उपयोग की रणनीति बनाये बिना भारत या बहुराष्ट्रीय कंपनियों की संलग्नता में तैयार बड़ी–बड़ी आयोजनाओं की वकालत वामपंथीयों ने की है। अंतर्राष्ट्रीय सीमा और सीमानदी की हैसियत निश्चित करने से पहले ही जल्दबाजी में की गई महाकाली संधि का फायदा जिसको भी हो इससे नेपाली राष्ट्रवाद की अभिवृद्धि नहीं हो सकती है, यह बात अब पुष्ट हो चुकी है। कोशी, गंडकी और टनकपुर में दुखता नेपाली राष्ट्रवाद के दर्द को महाकाली में महसूस न कर पाना किसी व्यंग से कम नहीं है।

भूमंडलीकरण और बाजारीकरण को सभी समस्याओं का समाधान समझने वाले अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवाद के इस दौर में कहीं 'बाजार राष्ट्रवाद' (जहां राष्ट्रवाद का स्वरूप और अभिव्यक्ति राजनैतिक बाजार विनिमय से निर्दिष्ट होता है) वामपंथीयों के लिए आकर्षक तो नहीं बना है? क्या ऐसे शर्मनाक प्रश्न पुछने की स्थिति कम–से–कम वामपंथीयों के संदर्भ में, 1990 के जन आंदोलन की क्या यही अपेक्ष थी?

आस्था और सिद्धांत की राजनीति : बीते दशक में वामपंथी राजनीति का सबसे निराशाजनक पक्ष आस्था और सिद्धांत की राजनीति में आयी कमी ही है। वर्गीय दृष्टिकोण से दुनिया को देखने और विश्लेषण करने की पद्धति में वर्गीय चेतना का परिचालन और उसका राजनैतिक प्रयोग एक महत्वपूर्ण हथियार है। वामपंथीयों के लिए राज्य शक्ति का महत्व भी इसके प्रयोग से उत्पादन के संबंधों में लाया जाने वाला संरचनात्मक परिवर्तन ही है। वर्गीय दृष्टिकोण में राज्य निष्पक्ष नहीं होता है। क्योंकि किसी भी स्थिति में यह किसी खस वर्ग के स्वार्थ की रक्षा कर रहा होता हैं। इस विषय में सैद्धांतिक तौर से स्पष्ट होना और उसका सर्जनात्मक प्रयोग करने के लिए नेपाल की वर्गीय संरचना, इसकी विशेषताएं व विकास के चरणों का विश्लेषण अपरिहार्य है। ऐसे विश्लेषण से ही नीतिगत और कार्यक्रमगत गंतब्य और प्राथमिकता निर्धारण करने में सहायता मिलती है। लेकिन संसदीय अभ्यास में लगे वामपंथीयों द्वारा बीते दशक में इस तरह के वश्लिेषण की दिशा में कोई पहलगदमी नहीं दिखाई देती है। इसके कारण न तो अल्पकालीन कार्यनीति और दीर्घकालीन रणनीति के बीच सामंजस्य को खोजा जाता है न मिलता हैं संसदीय व्यवहार को देखने भर से पता चलता है कि अलग–अलग विषयों में अलग–अलग समय में वामपंथीयों की सैद्धांतिक स्पष्टता का आधार क्या है, इनकी अड़ान का पता नहीं चलता। राप्रपा और कांग्रेस के साथ मिलकर वामपंथीयों द्वारा बनाई गई सरकार का औचित्य अल्पकालीन जुगत के रूप में दिखा भी दें तो दीर्घकालीन रणनीति के दृष्टि से पूर्णतः असफल रही। टनकपुर प्रकरण में राष्ट्र को झकझोर कर देने वाली वामपंथी अड़ान महाकाली संधि में भारतीय स्वार्थ की प्रतिरक्षा करते अस्त्र के रूप में दिखाई दी। गरीब तबके की हित सुरक्षा करने की कसम खाये हुए वामपंथी खुद को मिल रही सुविधा की सुरक्षा व बचाव में ही तल्लीन रहे।

वामपंथीयों में इस प्रवृति का दिखाई देना नेतृत्व की कमजोरी को सामने लाता है। नेतृत्व की जीवत शैली, आर्थिक संबंध, आचरण और कारोबार में पारदर्शिता नहीं दिखाई देती। अपने पक्ष में खड़े लोगों के लिए आंख बंद करना और जो नहीं हैं उनके लिए चिल्लाते रहने की प्रवृति बढ़ी है। नेतृत्व के लिए कोई आचार संहिता लागू नहीं होती। इस प्रयोजन के लिए पीत पत्रकारिता का स्वच्छंद प्रयोग बढ़ा है। इसके कारण नेतृत्व और वामपंथी मिशन के प्रति कार्यकर्ताओं की आस्था घटते जाती है। आस्था की कमी वैचारिक जग की कमी है।

बीते दशक में नेता और कार्यकर्ताओं को गांव–गांव जाकर किसान और विपन्न वर्ग के साथ नाखून और मांस का रिश्ता बनाने की संस्कृति पार्टी आफिस में आकर नेताओं की सेवा में जुटे रहने की प्रवृति में बदल गयी है। सैद्धांतिक निष्ठा, ज्ञान और वर्गीय चेतना में आधारित आचरण और इसको व्यवहारिकता के आधार पर कार्यकर्ताओं प्रशिक्षित करने की परंपरा के

अवशेषों को ढुंढने की जरूरत हैं अध्ययनशील अनुशासित और सचेत 'कैडरों' की पार्टीयां अब 'मास' पार्टी के रूप में बदल गयी हैं। संख्या की वृद्धि को पार्टी संगठन की सफलता का मापदंड मान लेने वाले रोग से ग्रसित नेता कार्यकर्ता किसी दूसरी पार्टी के कार्यकर्ताओं द्वारा अपनी पार्टी प्रवेश करने में खुशी की सीमा नहीं रहती, समारोह किया जाता है, रक्तिम टीका लगाया जाता है। मार्क्सवादी वर्गीय चेतना से लैस पार्टी सदस्यों को परिवर्तन का मेरूदण्ड मानने वाली वामपंथी पार्टीयों की सांगठनिक स्थिति की इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है? निम्न पूंजीवादी चिंतन का इससे दुखद उदाहरण और क्या हो सकता है?

इस प्रवृति का सबसे ज्यादा असर नेता और कार्यकर्ताओं के वर्गीय आधार और आकांक्षाओं में स्वाभाविक रूप से दिखाई देता है। वामपंथी पार्टीयों के गांव से केंद्रित स्तर के नेता सभी मूलतः मध्य और निम्न मध्य वर्ग के प्रतिनिधि हैं। इनमें से अधिकतरों की सोच, विचार, आचरण और कार्यशैली में वामपंथी पार्टी के कार्यकर्ताओं की तरह वर्गीय चेतना और सोच नहीं है। अपने–अपने स्तरों पर वर्गीय चेतना का परिचालन और अभिवृद्धि करते हुए सामाजिक विकास के कार्यों को संपन्न करना, स्थानीय स्तर के अनुभवों से नीति कार्यक्रम को परिभार्जन करना, सैद्धांतिक सोच की तरफ गरीब तबकों को आकर्षित करना, साधनहीन वर्ग की जीविका, स्वास्थ्य, शिक्षा और सपि को सुदृढ़ करते ले जाना और इन सब बातों के आधार पर कार्यकर्ताओं का मूल्यांकन अब नहीं होता है। फलस्वरूप कार्यकर्ताओं भीड़ बढ़ जाने के बावजूद उनके काम से स्थानीय स्तर की आर्थिक और सामाजिक विकास में कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं हुआ है, इसके उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

इसका प्रभाव अलग–अलग स्तरों पर होने वाले चुनावों में साफ दिखाई देता है। स्थानीय स्तर से लेकर संसदीय चुनाव में वामपंथी पार्टीयों के द्वारा किये जाने वाले पैसों से कई जिलों में प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी चीजों की जरूरत को पूरा किया जा सकता है। इस तरह जब वामपंथी पार्टीयां चुनाव में पूंजीवादी पार्टीयों के साथ उनकी शैली में प्रतिस्पर्धा करने लगती है, तो यह किस बात का संकेत है? जन स्तर में किये जाने वाले क्रियाकलाप और चेतना के अभिवृद्धि से वोटों को आकर्षित और संरक्षण करने के बदले बाहुबल और लाखों रुपये खर्च करने के कारण कई कार्यकर्ता इस चुनावी अभियान से संपन्न होने की आशा रखते हैं। कई जगहों ऐसे व्यक्ति को ही उम्मीदवार बनाया जाता है जो खर्च कर सकता है। ऐसा होने पर आस्था और सिद्धांत की राजनीति घोषणा पत्र में सिमट कर रह जाती है।

नेपाल का वामपंथी आंदोलन इस समय एक जटिल दौर से गुजर रहा हैं वामपंथी आंदोलन उग्रवाद और ससंदवाद के दो ध्रुवों में तो बंटा ही है, संसवादी भी आपस में विभाजित हैं। सैद्धांतिक आवरण का जामा पहनाकर हुए विभाजनों से भी नयी किस्म का सिद्धांतनिष्ट वामपंथी आंदोलन आगे बकढ़ा हो ऐसा नहीं है। इसके बदले पुराने रोग से ग्रसित नये दल की शुरूआत और इन तथ्यों को देखकर जो निष्कर्ष निकलता है उससे यही कहा जा सकता है कि संसदीय व्यवस्था के माध्यम से बहुसंख्यक गरीबों के पा में संरचनात्मक परिवर्तन की सभा बना देखने वाले वामपंथी समूह या दल या इनके सदस्यों को अपना दल और नेतृत्व की सैद्धांतिक, नैतिक, सांगठनिक वस्तुस्थिति, कार्यशैली और धरातल को गंभीरता के साथ

आलोचना की कसौटी में परखना होगा। इसका अर्थ सभी वामपंथी दलों और समूह को एक होना चाहिए, ऐसा नहीं है। इसका आग्रह केवल इतना है कि वामपंथीयों को अपने बृहद राष्ट्रीय और मानवीय हित के उद्देश्य प्राप्ति के संघर्ष से विमुख नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो यह इक्कीसवीं शताब्दी के शुरूआत में एक भयानक भूल होगी।

(डा. शर्मा भूगोल और प्रादेशिक योजनाविद् हैं। यह उनका लंबा, अप्रकाशित लेख का संक्षेप है।)

भारत–नेपाल संबंध

युव राज घिमिरे

आर.एस.एस. की बहुत सी गतिविधियां यहां चल रही है। भारत में वास्वत में एक दुखद घटना घटी है – विभाजन। विभाजन के बाद हिन्दु–मुस्लिम संबंधों में ठंडापन आया है। बावरी मस्जिद के विध्वंस के बाद भारत में एक सामाजिक विभाजन आया हैं लेकिन इस राजनीति से नेपाल का कोई संबंध नहीं है। वह लोग इस घृणा की राजनीति को नेपाल में लेकर आये है। इसके कारण नेपालगंज में कुछ सांप्रदायिक झड़पें हुई है। यह इसका परिणाम है और यह बढ़ता ही जाएगा। हिन्दु–मुस्लिम के बीच की सामुदायिक भावना के विभाजन के लिए आर. एस.एस. शिक्षा के माध्यम से जोड़–तोड़ से आगे बढ़ रहा है।

यहां पर वह लोग एन.जी.ओ. कह रहे हैं लेकिन बाहर से शिक्षक लाये हैं। जो सरकारी नियमों का पालन नहीं कर रहे है। आर.एस.एस. की अखंड भारत की सोच है, जिसके तहत वो नेपाल को एक अलग राजनीतिक इन्टीटी के रूप में नहीं स्वीकार करते। पिछले साल आर. एस.एस. ने पचहतर साल पूरे किये, इसका मराठी में विवेक नाम से एक मुखपत्र प्रकाशित होता है। इसने एक सपलमेंट निकाला है अमृत पथ, जिसमें उन्होंने एक नक्शा बनाया है और उसमें नेपाल को भारत के एक हिस्से के रूप में दिखाया गया है। ऐसा विचार रखने वाले और नेपाल को अखण्ड भारत का एक अंग मानने वाला समूह नेपाल में भी सक्रिय है। गैर सरकारी संगठनों के रूप में गुपचुप ढंग से अपनी कार्यवाही संचालन कर रहा है। इसके कारण नेपाल में भी सामाजिक विभाजन तो होगा। भारतीय मीडिया इनकी गतिविधियों को सकारात्मक रूप में हाइलाईट करता रहता है। मीडिया में जो दृष्टिकोण दिखाई देता है उसको लेकर यह लोग यहां आए हैं, यह एक खतरनाक स्थिति बन सकती है।

मुझे लगता है इन सब बातों को लेकर दोनों देशों की समस्याओं के समाधान में और विकास में क्या किया जा कसता है, इसका एक सही हिसाब लगाकर सरकारों को कुछ प्रभावित किया जा सकता है। जनता के स्तर पर वह बड़ी उपलब्धि होगी। इससे एक दूसरे की बीच की असमझदारी बहुत हद तक कम की जा सकती हैं। इसके लिए मीडिया की एक रिस्पोंसिव और रेस्पोंसिबल भूमिका होनी चाहिए। नेपाल में मीडिया का विकास इस स्तर तक नहीं हुआ है इसलिए भारतीय मीडिया को इसमें ज्यादा जिम्मेदार होना चाहिए। इसमें भारतीय मीडिया की ज्यादा भूमिका है। वह लोग वास्तविकता से संबंधित जानकारी दें और रिपोर्टिंग करें तो नेपाल में भारत विरोधी गतिविधियां एक हद नियंत्रण किया जा सकता है। इस समय तो केवल जिंगीज्म को बढ़ावा देने का काम हो रहा है। भारतीय मीडिया कुछ लिख देता है, बिना वेरीफाई करके तो नेपाली भी उसको काउण्टर करता है, इससे समस्या और जटिल बन जाती है।

ठोस काम क्या–क्या हो सकते है?

भारत–पाकिस्तान आपसी विवाद के कारण कोई सभा, सम्मेलन करने के लिए नेपाल को निष्पक्ष देश के रूप में लिया जाता है। और मीडिया के लोगों से जब यह बातें होती है तो वो इसको स्वीकार भी करते है। लेकिन जहां इस जिंगोइज्म की बात आती है उस समय तथ्यों को तिलांजली दी जाती हैं नियमित रूप में प्रेस के लोगों से इंट्रेक्शन हो या और भी कई फोरम है जिनके इन मुद्दों पर बातचीत की जा सकती है। जैसे फौरन अफेयर्स से संबंधित इंडियन काउंसिल आफ वर्ल्ड अफेयर्स है, नेपाल काउंसिल आफ वर्ल्ड अफेयर्स है, यहां पर इन बातों को रखा जा सकता है। एटीटर्स गिल्ड में यह बातें हो सकती है, पीपुल्स इनिसिएटिव्स में लोग है वहां पर यह बातें चलाई जा सकती है।

एक बात है कोई रिपोर्टिंग करना चाहता है तो यह तथ्य पर आधारित होना चाहिए। यदि तथ्य पर आधारित होने के बावजूद कोई डिटेट करने के उद्देश्य रखता है तो समाधान नहीं हो सकता। एक्सचेंज प्रोग्राम यह भूमिका निभा सकता है। कई विश्व विद्यालय हैं जहां दक्षिण एशियाई अध्ययन या नेपाल अध्ययन के विभाग हैं, जे.एन.यू. में भी नेपाल स्टडीज प्रोग्राम शुरू हो रहा है।

नेपाल के लोकतंत्र के संबर्द्धन में इस संबंध का प्रभाव

यह महत्वपूर्ण बात है, प्रोपोगंडा के स्तर एक मैसेज यह है कि नेपाल पाकिस्तान नहीं है, अफगानिस्तान जैसा रोग स्टेट है, अगर ऐसा है तो डेमोक्रेसी का संबर्द्धन यहां नहीं हो सकता है। लोकतांत्रिक प्रणाली को हैम्पर होगा यदि ऐसा है तो, विदेशी सहयोग और व्यापार संबंधों में भी इसका असर होता है। इसके कारण एक अव्यवस्थित अवस्था पैदा हो सकती है और अव्यवस्थित होकर लोकतंत्र नहीं चल सकता। यदि यह इंटेंशन है तो इसको समाप्त करना होगा। मुझे लगता है यह इंटेंशन नहीं है। मैने भी वहां पर काम किया है मीडिया की भूमिका को मैने देखा है।

सरकारों के स्तर पर जरूर समस्यायें है, खुली सीमा के कारण, लेकिन समस्या का समाधान भी होता है। शार्ट आउट नहीं भी है तो स्वतंत्र सोच रखने वाली वहां जनता और बाहर के लोगों का जज करने की जगह होनी चाहिए। ऐसी कठिन परिस्थिति नहीं है।

लोगों के हस्तक्षेप से इस प्रकार की अवस्था खड़ी न हो ऐसा हो सकता है, यह दोनो ही तरफ के लोकतंत्र संवर्द्धन के लिए अच्छी बात होगी।

भारत का कहना है कि नेपाल में भारत विरोधी आतंकवादी गतिविधियां ज्यादा है यदि यह वास्तविकता है तो भारत भी सुरक्षित नहीं है। ऐसा नहीं है लेकिन ऐस न होने के बावजूद ऐसा कहते रहने से मित्रता का संबंध विगड़ते हैं नेपाल का लोकतंत्र भारत के लोकतंत्र से कमजोर होने के कारण यह और कमजोर बनाता है और संस्थागत विकास के लिए भी एक दूसरी तरह का संदेश जाता है। भारत के पचास वर्षों का लोकतंत्र राष्ट्रीय हित के प्रचार में ऐसा प्रोपोगंडा करता है तो भी यह अच्छा नहीं है।

विदेशी सहयोग : नेपाल और भारत में विदेशी सहयोग के सवाल पर कुछ खास अंतर नहीं है इसके परिणाम खतरनाक होंगे। आर.एस.एस. का एक उदाहरण है 94 अंतर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठन है, ऐसा सुनने में आया है। इनको हर पांच साल में सरकार के साथ अपने मसौते को नवीकरण करना होता है। एन.जी.ओ. भी इसी तरह के चैनल से फंडिंग पाते है। लेकिन निश्चित रूप से इसमें पारदर्शिता नहीं हैं एक किस्म का नेक्सस भी दिखाई दे रहा है। सरकारी नौकरशाहों, राजनीतिक नेतृत्व, कुलीन वर्ग के लोग और एन.जी.ओ. के बीच एक संबंध होने के कारण एक किस्म की शंका उठ रही है।

सामाजिक काम और विदेशी पैसा : सामाजिक काम क्या है, कैसे करना है इस योजना को बनाने में स्थानीय संलगनता जरूरी हैं लोगों की जरूरत क्या है और इसको कैसे पूरा किया जाय, इसमें उनकी संलग्नता की जरूरत है। ऐसे निर्णय प्रकरण में स्थानीय सहभागिता है या एजेण्डे को बाहर लाकर केवल स्थानीय प्रतिनिधियों का समर्थन प्राप्त है। इस बात विश्लेषण होना अभी बाकी है।

जहां तक मैने देखा है एजेंडो को बाहर से लाकर काम चल रहा है। होता तो चाहिए कि स्थानीय लोगों को प्रतिनिधियों को तालिम दी जानी चाहिए, जिनकी आवश्यकता को पूरा करना है कार्यान्वयन करते समय उनकी संलग्नता नहीं है।

1990 से पहले जैसे पैसा आता था वो एक शक्ति केंद्र से नियंत्रित होकर आता था, अीाी भी वह समूह के नियंत्रण में ही है। हमारी जो अवस्था है इसमें विदेशी पैसे आना अनुपयुक्त है ऐसा नहीं है, इस सरकारी बजट का एक बड़ा हिस्सा विदेशी सहायता का है। सरकार को लेना चाहिए एन.जी.ओ. नहीं एसा नहीं है। शायद विकास की गति को कायम रखने के लिए लेना जरूरी हो। यह एक अनिश्चित समय के लिए नहीं हो सकता है। इसकी समीखा नियमित होनी चाहिए। स्थानीय संलग्नता है या नही, स्थानीय नेतृत्व का विकास हुआ या नही, तो यह भी नहीं हुआ है।

आंतरिक श्रोत भी निर्माण होना चाहिए, इससे स्थानीय नेतृत्व को यह कार्यक्रम हमारा है ऐसा लगता है। इस समय ठीक इसके विपरीत हो रहा है। स्थानीय जरूरत के लिए विदेशी सहायता ठीक है, अीाी यह चल रहा है।